"यन्त्र-मर्यादा"

महंत अथवा सिद्धियों (दैवी ताकतों) द्वारा किये गये प्रतिकूल संकल्पों का निराकरण अर्थात "यन्त्र मर्यादा" जीव के अनन्त काल से अनन्त ही जन्म हुए हैं और आगे भी होते ही रहेगें ठीक इसी तरह से (यदि इस खेल से वह विमुक्त नहीं होता) सभी इन्सानी जन्मों में जीव पाप और पुण्य दोनों तरह की ही क्रिया अपनाता है । तथा इन सभी का भुगतान देने के लिये फिर इसे चउरासीह लाख योनियों में भ्रमण करना ही पड़ता है । यह एक

तरह से जीव के उपकार के लिये ही हैं । क्योंकि जून भुगत लेने के बाद जीव उस क्रिया (पाप अथवा पुंन) से पूर्णतया मुक्त हो कर निर्मल-पाक अथवा पवित्र अपने स्वाभाविक स्वरूप में स्थित होने के लायक बन जाता है । देव सहित सभी जूनें नीचे अथवा ऊपर के मण्डलों की कितनी भी "साधन सम्पन्न" क्यों न हो इस चउरासीह लाख में ही इन की गिनती है । इस से ही स्पष्ट हो जाता है कि पाप अथवा पुण्य, जीव के लिये तो दोनों पाप ही में गिनी जायेंगी । कारण पुण्य के भुगतान स्वरूप मिली दैवी जून भी तो "एक पिंजरा" (अथवा बंधन) ही है । पिंजरा लोहे का न हुआ सोने का हुआ ! रहा तो जीव बन्धन में ही ना । मुक्त तो न हो सका। इसीलिये गुरु साहिब जी कहते हैं कि "पुण्य दान जो बीजदे सभ धरमराय के जाई ।" "क्रिया" केवल और केवल मनुष्य जन्म की ही गिनती में है । शेष सभी तो केवल भुगतान मात्र ही है । इसी से स्पष्ट हो जाता है कि कितनी सावधानी की जरूरत है क्रिया अपनाने में । लेकिन देखने में क्या आता है कि क्रिया करते वक्त तो जीव आँख ही बंद कर लेता है और फिर भुगतान के समय सिवाय रोने-पीटने के कुछ हाथ ही नहीं आता । "मनमुख दुख का खेत है - दुख बीजे दुख खाई । दुख विच जमै - दुख मरै - हउमै करत विहाई । आवण जाण न सुझई - अंधा अंध कमाई । जो देवै तिसै न जाणई - दिते को लपटाई ।

नानक पूरब लिखिआ कमावणा - अवरु न करणा जाई ।" अब क्रिया जीव ने कब कौन से काल-जन्म (मनुष्य) में अपनाई, सिवाय उसके कौन दावा कर सकता है । इन क्रियाओं का "निश्चित प्रतिफल" जीव को हर जून में "केवल" उपलब्ध होता है । मनुष्य जामें में भी तीन हिस्से तो केवल यही निश्चित प्रतिफल मात्र ही हैं शेष एक हिस्सा (चौथाई) ही केवल इसे आगे को कोई भी क्रिया अपनाने की छूट है (अपने उपलब्ध "विवेक" द्वारा वह भी पिछली क्रियाओं के ही प्रतिफल रूप में ही प्राप्त अथवा सीमा में ही है।) अब देखने में क्या आता है कि तीन हिस्से जिस रो (बहाव) में (अच्छी अथवा बुरी क्रिया) जीव को प्रतिफल भोगने के खींचते है जीव उपलब्ध विवेक की कमी के कारण चौथा हिस्सा भी उन तीन हिस्सों पर ही खर्च कर देता है । इसे कल्पना में भी "भान" ही नहीं होता कि वह उत्थान की ओर बढ़ रहा है अथवा पतन की ओर, बस आँख बंद कर के पतन की ओर ही बढ़ता चला जाता है जितना चला उतना ही "गर्क ।" होमै इतनी प्रबल होती है कि सच्चा रास्ता बताने वाले को भी "घोर शत्रु" ही मानता है । फिर कैसे इसे "जगाया" जाये ? स्पष्ट है कि एक ओर तो क्रिया की मलिनता दूसरी ओर विवेक की कमी । तीसरा इसे फिर "मार्ग दर्शक" भी अपनी ही तरह के विवेकहीन अर्थात बिना आँख वाले ही (लगभग) मिलते हैं । उन्हें अपने मान-सम्मान, भेंट-

पूजा, मत-धर्म (निजी चलाये हुऐ), अनन्त कामनाओं के भंवर में डूबने इत्यादि से ही फुर्सत नहीं मिलती, फिर इस बढ़ती जा रही अंधों की भीड़ का कौन-कब-क्या विचार करे ! इससे जीव के बन्धन में से न निकलने की मजबूरी स्पष्ट हो जाती है । अब देखें तो यह हालत है कि इसे खुद का "भान" ही नहीं रह गया कि यह कौन है, कहाँ की रहने वाली तथा कहाँ से आई है । अपने को केवल शरीर जानती है । और शरीर के छूटने पर सब रोते पीटते हैं प्राप्त होने पर नाचते-कूदते हैं इस से तो यही परिभाषा केवल सिद्ध होती है । "बारह सूरज" की प्रत्यक्ष क्षमता और यह कमीनी हालत "एक कैदी" की जिन्दगी (काल कोठरी) जो सूर्य की किरण को देखने का भी अधिकारी नहीं होता और वहीं तड़प-2 कर जान दे देता है । क्या ऐसी ही हालत हम सब की बनी हुई नहीं है क्या ? विचार करने योग्य विषय है हम यहाँ क्यों है ? किस कारण से उलझे हुऐ हैं । न हमें मनुष्य जन्म की कीमत पता है न समय की कीमत का एहसास है । क्या यह प्राण शक्ति इसी तरह से ही चली जायेगी ? "प्राणी तूं आइआ लाहा लैण । लगा कित कुफकड़े - सभ मुकदी चली रैण । कुदम करे पशू पंखिआ - दिसै नाही काल ।" (5-43) इसी से स्पष्ट हो जाता है कि मुक्त होने की क्रिया कोई जादू-मन्त्तर या आर्शीवाद का तो विषय कल्पना में भी नहीं है । पर महंतो (गद्दीधारी दलाल) नें

इस की मजबूरी का निजी स्वार्थो (वासनाओं) की पूर्ति के लिये अनन्त काल से अपने हाथ का "खिलौना" बना रखा है जिसमें दैवी ताकतों की भरपूर "मदद" उपलब्ध स्पष्ट देखने में आती है । इन "मीठे गोल-गोल" आर्शीवादों के जाल में फंसा जीव ऐसे अभिशाप को प्राप्त होता है कि वह छूटने के लिये "पुरुषार्थ" करना कल्पना में भी अपराध ही मानता है । तथा इन गद्दियों-डेरों इत्यादि के लगातार चक्कर लगाता न तो अपनी उपलब्ध क्रिया में सुधार अर्थात पवित्रता लाता है और न पिछली की हुई क्रियाओं अर्थात पापों के प्रति "लज्जा" को ही महसूस करता है । आगे से उसे निरन्तर झूठे पूरे न होने वाले "आश्वासन" मिलते ही रहते हैं फिर इस क्रिया में कितने युग बीत जाते हैं इसकी गणना तो कल्पना में भी नहीं है । इसकी प्रत्यक्ष मिसाल हम सभी हैं जो इस सृष्टि को रोशन कर रहे हैं । यह कोई पहला जन्म तो है नहीं ऐसे अनन्त जन्म तथा काल बीत चुके फिर भी हम यहीं के यहीं हैं । और किसी मिसाल की तो कोई अब जरूरत ही नहीं रह जाती । जो क्रियाऐं बाहर की हमने अपना रखी हैं । आर्शीवाद, दर्शन, नाम (अमृत), सत्संग, कथा कीर्तन, भण्डारा, कीर्तन दरबार, मत्था टिकाई, तीर्थ-स्नान (भ्रमण) इत्यादि-इत्यादि न जाने ऐसे कितने सहारे अनन्त युगों से अनन्त जन्मों में इस जीव ने धारण किये पर सिद्ध क्या हुआ ? इसी सृष्टि का अंग बने हुऐ

हैं । कारण किसी एक का भी सम्बन्ध जीव के मुक्त होने से कल्पना में भी सम्भव ही नहीं है । जीव देखा जाये तो मुक्त ही है ! केवल "वासना" के कारण ही बँधा है अभी त्याग दे "वासना" को तो अभी छूट जाये । पर वासना को जान से भी ज्यादा प्यारी मानता है कितना भी दुख इसकी पूर्ति में उठाना पड़े । पाप करना पड़े करता है जी खोल कर, पर हवस पूरी होनी ही चाहिये । इन्हीं हवसों को ही पूर्ण करने के लिये ये सभी जूनें निर्धारित की गई हैं । मांस के शौंक के लिये गिद्ध, स्त्री के लिये वेश्वा (वेश्या), पुत्र के लिये सूकर इत्यादि-इत्यादि । असल क्रिया छूटने की इस सभी से बिल्कुल उल्ट त्याग (कामना), वैराग्य (सच्चा) से सम्बन्धित हैं जिसमें मर-मर कर जीना पड़ता है । "मर-मर जीवै ता किछ पाए नानक नाम वखाणै ।" (1-360) अब सच तो यह इन वचनों से स्पष्ट ही है "वासना" (को जो) छोड़ता नहीं और मुँह पर रूहानियत, नाम, अमृत, गुरु इत्यादि का "चौखटा" (मुखौटा) लगा लेता है । अब बताईये इस कपट-पाखण्ड से कैसे उस परम पद को प्राप्त कर लेगा यानी कभी किसी भी काल में नहीं उल्टा दण्ड और भोगना पड़ेगा इस कपट का, "पाखण्ड कीने जम नाहीं छोडै लै जासी पत गवाई ।" नतीजा आप प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं इस भीड़ को, ये सभी दरअसल "झूठ के ही व्यापारी" इकट्ठे हुऐ हैं । अगर (आर्शीवाद-फरियाद-दर्शनों) के प्रतिफल से छूटना

निश्चित हो कल्पना में भी तो यह सृष्टि तो भाई साहब एक पल को भी स्थिर न रह पायेगी । इस सच को भी यह जानता ही है पर फिर भी इसी "फोकट" के रास्ते को ही अपनाता है । अगर आंशिक रूप से भी इसे ठीक माना जाये तो अगर सृष्टि में कोई दोषी साबित होगा तो सिर्फ "एक परमात्मा" ही । और परमात्मा का एक महान गुण है कि वह अपने पर कभी भी दोष नहीं आने देता यही इस "गुप्त खेल" की विलक्षणता है । फिर उपाय क्या है ? केवल अपने पापों के लिये शर्मिन्दा होना, उस "एक" के आगे लगातार खड़े हो कर के (अन्तर में) गिड़गिड़ाना (भजन) केवल "पवित्र हृदय" से, संकल्प करना भविष्य में कल्पना में भी पाप में संलग्न न होने का । "खामोश" रह कर के अपनी करतूतों को (जो) प्रतिफल के रूप में उपलब्ध है भुगतना । "हुकम रजाई चलणा नानक लिखिआ नाल ।" शेष जीव का तो कोई विषय ही नहीं है । (मुक्ति का) सिवाय इस परिभाषा के सभी मत-धर्म महंत (दलाल गद्दीधारी) जीव की इस मजबूरी का फायदा उठा कर दुनिया को मुर्ख बना रहे हैं अर्थात अंधे कुँऐं में ढकेल रहे हैं । जीव सब कुछ अपनाता है छूटने के लिये केवल इसी एक "भाव" (परिभाषा) को छोड़ कर के । अब कैसे छूटे ? अपनाये में जितना ज्यादा पचता है उतना ही अधिक गहरा डूबता चला जाता है । इस परिभाषा को अपनाने से पहले जीव को कुछ

सहारा चाहिये ! वह जड़ में फँसा खुद को भी जड़ का ही रूप समझता है तथा तलाश भी जड़ में ही करता है । इसलिये जड़ से ही (पहली पउड़ी) इसकी शुरुआत करनी वांच्छनीय है । (कुछ निर्धारित समय के लिये कुछ विशेष क्रिया) कारण दूसरी पउड़ी पर तो यह कल्पना में पाँव न धर सकेगा, इसके तो गले मे फंदा ही (दैवी ताकतों का) इतना सख्त हो चुका है कि यह सांस भी नहीं ले सकता अर्थात या तो दैवी जूनों (प्रेत-बाधा) नें घेर रखा है या खुद ही निराश आत्म-हत्या करने को तैयार बैठा है । पहले "विशेष शहीदी स्थानों" (जैसे बंगला साहिब, रकाब गंज, शीश गंज, माता सुन्दरी जी इत्यादि) पर जा कर अपनी करतूतों के लिये गिड़गिड़ायें तथा आगे से पवित्र रहनी का संकल्प करें । स्नान कर पीने को जल (अमृत) घर पर रखें । एक चौंकी पर तेग छोटी बिना म्यान की श्रद्धा से साफ बर्तन में जल भर कर के रखें । विशेष बाणियों (सुखमनी साहिब, जपुजी साहिब, जाप साहिब इत्यादि) पाँचों का "सुबह" अथवा किसी भी वक्त पवित्र रहनी से शुद्ध हृदय के द्वारा निश्चित उत्तम प्रतिफल का विश्वास रख कर के करें तथा बीच-2 में तेग से जल को भी खण्डित करते रहें । इस जल को परिवार के सभी सदस्य पीयें-स्नान करें तथा घर-व्यवसाय आदि स्थानों पर पूर्ण श्रद्धा से छिड़कें । यह यन्त्र का विशेष अंग विशेष विघ्नों के लिये उत्तम कारगार उपाय हैं । छोटे

जीवों के लिये इसी वक्त "पाठ" तथा निश्चित तौर पर स्वाध्याय समाप्त कर पवित्र रक्षित संकल्प द्वारा मूल मंत्र को लिख कर यन्त्र बना जीव के किसी भी अंग से बाँध दें । बड़ों के लिये "पाठ - स्वाध्याय" तथा गुरमन्त्र "सतनाम" का ध्यान और जप आज्ञा चक्र पर श्रेष्ठ उपाय है। एक बात हर समय ध्यान रखने योग्य है कि ये दोनों उपाय यन्त्र तथा मन्त्र केवल तन्त्र (मर्यादा) पर ही आधारित खड़े हैं। "मर्यादा" में जरा सी भी ढील हुई नहीं कि ये दोनो यन्त्र-मन्त्र भी ढीले हो कर के केवल दिलो-दिमाग तथा शरीर का केवल बोझ मात्र ही साबित होंगे । अतः अत्यन्त सावधानी की जरुरत है "मर्यादा" (तन्त्र) मे दृढ़ रहने की । सभी दैवी ताकतों-(महंत भी इन्हीं की मदद से ही केवल) प्रतिकूल संकल्प सिद्ध करने के लिये सदा निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं । इसलिये विशेष तौर पर इन सभी विशेष प्रकार के "स्थानों" से परहेज रखना ही अत्यंत आवश्यक ही है । बताये गये विशेष स्थानों पर भी विष्णु जी की ही माया कार्य करती है पर उत्तम स्वरुप में तथा साथ ही "शब्द" का भी पहरा रहता है जो "सच्चे साधन" को अवश्य अनन्त उपायों-कारणों द्वारा ठीक मार्ग दर्शन देता है । कुछ विशेष स्थानों पर जहां केवल विष्णु जी की माया का ही प्रभुत्व है वहां से त्रिलोकि से बाहर निकलने का मार्ग दर्शन मिलना लगभग असंभव ही हैं । फिर भी "सच्चा साधक" "शब्द"

द्वारा पकड़ ही लिया जाता है पर ऐसे केस बहुत ही कम न के बराबर ही दृष्टिगोचर होते हैं । सभी ताकतें केवल मैल (क्रिया) का ही अनुसरण करती हैं जो जीव पिछले जन्मों में अपना चुका है । तथा जिस का प्रतिफल भोगना निश्चित रूप से बाकी है । इसमें ये ताकतें फेर-बदल कर अपना प्रभुत्व जमाती तथा मानव को "उपभोक्ता-पशु" बन कर जीने के लिये मजबूर करती रहती हैं । "देवताओं को कभी भी ईष्ट ही नहीं है कि उनका "उपभोक्ता पशु" उन से ऊपर के लोकों में रहे।" भगवान श्री कृष्ण जी के इन वचनों में पूर्ण यथार्थ भरा भेद (दैवी करतूत) प्रकट ही है । इसीलिये उन्होंने इन सभी विघ्नों के निवारण के लिये वचन किया है कि "स्वधर्मान परित्यज्य मोमकं शरण व्रज ।" जो उन की इन वाणी को श्रद्धा से अपनाता है उसका "योग-क्षेम" भी वे स्वंय ही उठाते हैं यह उनका निजी "प्रण" है जीव के कल्याण के ही वास्ते । इन सभी पहलुओं पर विचार करने से केवल यही एक उपाय केवल लाभकारी उत्तम फलदायक आत्मा के लिये कारगार साबित हो सकता है।